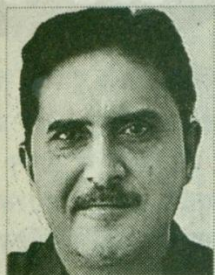


देश में हालात ऐसे हो गए हैं कि पीएचडी डिग्रीधारी साधारण लिपिक और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तक के पदों के लिए आवेदन कर रहे हैं। क्या देश में दिन ब दिन बिगड़ते जा रहे रोजगार के हालात के कारण ऐसा हो रहा है? या फिर, इसके लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निरंतर गिरते स्तर को जिम्मेदार ठहराना चाहिए?

अनुपयोगी होती जा रही पीएचडी डिग्रियां

पी. पुष्कर



'फोर्ब्स इंडिया' ने उच्च शिक्षा में 24 थिंक्स में शामिल किया, मैकगिल विश्वविद्यालय में रिसर्च फैलो रहे, बिट्स, गोवा में अध्यापन

भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा बांटी जा रही पीएचडी डिग्रियों का स्तर इतना नीचा है कि किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर शिक्षकों के रिक्त पद भरने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार नेट या स्लैट पास करना अनिवार्य है भले ही पीएचडी कर लिया हो।

पिछले दिनों तमिलनाडु लोक सेवा आयोग की 9500 पदों की मंत्रालयिक संवर्ग की भर्ती परीक्षा आयोजित की। करीब 20 लाख आवेदकों में से 992 पीएचडी डिग्रीधारी थे व 23 हजार एम.फिल डिग्री लिये हुए थे। ऐसा पहली बार नहीं हुआ है, जब बड़ी संख्या में पीएचडी डिग्रीधारी क्लर्क जैसे छोटे पद के लिए परीक्षा में बैठे हों। दो साल पहले ही सितम्बर 2015 में जब उत्तर प्रदेश सरकार ने सचिवालय में चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए आवेदन आमंत्रित किए थे तो 368 पदों के लिए 23.25 लाख आवेदन आए और उनमें से 255 अभ्यर्थी पीएचडी डिग्रीधारी थे। इस पद के लिए अनिवार्य न्यूनतम योग्यता थी पांचवीं कक्षा पास होना व साइकिल चलाना आता हो। आखिर स्नातकोत्तर के बाद उत्कृष्ट शोध कर पीएचडी जैसी डिग्री हासिल करने वाले लोग लिपिक या उससे छोटे पदों के लिए आवेदन क्यों करते हैं? संभवतः इसकी तीन वजह हो सकती हैं। पहली, बहुत ही साधारण सी बात है कि भारतीय विश्वविद्यालय कई अयोग्य लोगों को पीएचडी डिग्री बांट देते हैं। फिर, ये ही लोग नाम भर के लिए पीएचडी लिये किसी कॉलेज, यूनिवर्सिटी और शोध संस्थानों में अध्यापन या शोध संबंधी सम्माननीय नौकरी के लिए आवेदन करने के बजाय हर तरह के छोटे-मोटे पद के लिए आवेदन कर देते हैं। कुछ लोग यह मान सकते हैं कि केवल उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे पिछड़े राज्यों के विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाने वाली पीएचडी डिग्रीधारियों का यह हाल है परन्तु जब तमिलनाडु जैसे राज्यों में भी यही स्थिति सामने आती है तो लगता है कि वहां भी यही हालात हैं। दूसरी वजह हो सकती है कि हमारे कॉलेज और विश्वविद्यालयों में नौकरियों का अभाव है। यह काफी हद तक सच है। अखबारों में सामान्यतः दिखाया जाता है कि हमारे श्रेष्ठ शिक्षण संस्थानों में 30-40 प्रतिशत सीटों पर अध्यापकों के पद रिक्त होते हैं। सरकारी विश्वविद्यालयों व निजी कॉलेजों में इससे अधिक संख्या में अध्यापकों के पद रिक्त होते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि आवेदन कम पदों के लिए आमंत्रित किए जाते हैं और नई भर्तियां कर ली जाती हैं। वित्तीय संकट से जूझ रहे सरकारी विश्वविद्यालय जहां जरूरत से कम पदों पर नए शिक्षकों की भर्ती कर रहे हैं, वहीं प्राइवेट संस्थान पूर्णकालिक शिक्षकों के बजाय अंशकालिक अध्यापकों को ही नौकरी दे रहे हैं क्योंकि उन्हें अपेक्षाकृत कम वेतन देना होता है। तीसरा कारण यह हो सकता है कि पीएचडी डिग्रीधारी युवा ऐसे



बेहतर रेटिंग वाले विश्वविद्यालय में पीएचडी करने वालों को उतना सा कष्ट भी नहीं होता जितना दुनिया के किसी अन्य विश्वविद्यालय से स्नातक करने वाले विद्यार्थियों को होता है।

पदों के लिए इसलिए आवेदन करते हैं क्योंकि उनकी योग्यता के लायक नौकरियां उपलब्ध ही नहीं हैं। साथ ही कुछ मामलों में जरूरत से अधिक योग्य पीएचडी डिग्रीधारी उपलब्ध पदों के योग्य नहीं पाए जाते। इसीलिए वे जो भी अवसर उपलब्ध हैं, वे उनके लिए ही आवेदन कर बैठते हैं। ये तीनों कारण यह समझने के लिए काफी हैं कि पीएचडीधारी सैकड़ों आवेदक लिपिक या उससे कम दर्जे के पदों के लिए क्यों आवेदन कर देते हैं। लेकिन, चिंता का विषय तो यह है कि निम्न स्तर की पीएचडी डिग्रियां भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए कलंक साबित हो रही हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा बांटी जा रही पीएचडी डिग्रियों का स्तर इतना नीचा है कि किसी भी कॉलेज या विश्वविद्यालय में प्रारंभिक स्तर पर शिक्षकों के रिक्त पद भरने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग मानकों के अनुसार नेशनल एलिजिबिलिटी टेस्ट (नेट) या स्टेट लेवल एलिजिबिलिटी टेस्ट (स्लैट) पास करना अनिवार्य है भले ही पीएचडी कर लिया हो। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि पीएचडी को भावी शिक्षकों की अनिवार्य योग्यता का संपूर्ण

मापदंड नहीं माना जा सकता। इसका कारण है कि अच्छी रेटिंग वाले विश्वविद्यालय में पीएचडी करने वालों को उतना सा कष्ट भी नहीं होता जितना दुनिया के किसी भी अन्य विश्वविद्यालय से स्नातक करने वाले विद्यार्थियों को होता है। दरअसल भारत का उच्च शिक्षा तंत्र हर स्तर पर चरमराया हुआ है, स्नातक से अधिस्नातक व व्यावसायिक पाठ्यक्रमों तक, सभी पाठ्यक्रमों में एक जैसे ही हालात हैं। विडम्बना यह है कि जिसके पास जो डिग्री है, वह उस डिग्री से संबंधित नौकरी के ही लायक नहीं है। देश में ऐसे हजारों स्नातक हैं जो बेरोजगार ही रह जाते हैं। अनुपयोगी पीएचडी डिग्रियां तो भारतीय उच्च शिक्षा तंत्र पर ही सवालिया निशान लगाती हैं। यह सही है कि पहले कुछ सुधार किए गए थे लेकिन वे पीएचडी को मुश्किल बनाने के लिए कुछ खास नहीं थे। उदाहरण के लिए कोर्सवर्क यानी पाठ्यक्रम संबंधित कार्य लेकिन जितने भी विश्वविद्यालयों ने अपने पीएचडी विद्यार्थियों के लिए कोर्सवर्क लागू किया वह दिखावा बन कर रह गया। ना तो पाठ्यक्रमों की सामग्री चुनौतीपूर्ण है और ना ही उनका मूल्यांकन बल्कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नियमानुसार कोर्सवर्क विद्यार्थियों को नेट या स्लैट पास करने की अनिवार्यता से बचाने में सहायक है। जब सरकार पीएचडी करवाने वाले बहुत कम संस्थानों में ही समुचित नियमन प्रक्रिया लागू नहीं कर पा रही है तो कैसे उम्मीद करें कि वह राज्य या राष्ट्रीय स्तर पर आवश्यक उच्च शिक्षा सुधार लागू कर सकती है?